संस्कृत साहित्य सौरभ

प्रतिमा-नाटक

000690

72

Gandhi Smarak ...
Karnatak Sha...
138, NEHRU CIRCLE
BANGALORE-3.

015,2 BHA
152w3N58;1
H.000690

TATTVA PRACHAR
BANGALORE

000690

संस्कृत-साहित्य-सौरभ
३२

भास-कृत

प्रतिमा-नाटक

GANDHI SMARAKA GRANTHALAYA
DATE.........................
ACC. No. 9289
CALL No.......................
BANGALORE-1.

श्री देवर्षि सनाढ्य
द्वारा
कथा-सार

विष्णु प्रभाकर
द्वारा
संपादित

१९५८

सस्ता साहित्य प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

GANDHI SMARAKA GRANTHALAYA
DATE........................
ACC. No............................
CALL No.......................
BANGALORE-1.
H·000690
O15,2BHA
152w3N58;1

पहली बार : १९५८
मूल्य
सैंतीस नये पैसे

मुद्रक
हिंदी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

GANDHI SMARAKA GRANTHALAYA
DATE.....................
ACC NO.....................
CALL NO.....................
BANGALORE-1.
C00690

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यंत समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो, जिसके संबंध में मूल्यवान सामग्री का अनंत भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिंदी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परंतु उसका रस वे हिंदी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के महाकवियों, नाटककारों आदि की विशिष्ट रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हम हिंदी में प्रस्तुत करें। फलतः अबतक कई पुस्तकें निकाल दी गई हैं।

इस पुस्तक-माला से हिंदी के सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें, इसलिए पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का संपादन हिंदी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

आशा है, हिंदी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान् रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—मंत्री

भूमिका

'प्रतिमा-नाटकम्' महाकवि भास की रचना है। भास बड़े प्रसिद्ध कवि हुए हैं। कालिदास, वाणभट्ट और राजशेखर आदि स्वनामधन्य कवियों ने उनकी बड़ी प्रशंसा की है। अभिनव गुप्त, वामन और भामह आदि आचार्यों ने भी उनके रूपकों का उल्लेख किया है, लेकिन खेद है कि इतनी प्रसिद्धि होने पर भी इनके बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है कि यह कब और कहां हुए। अधिकांश विद्वान् मानते हैं कि यह तीसरी सदी में हुए थे। इनके लिखे तेरह रूपकों का पता चला है। पर बहुत-से विद्वानों को इस बारे में शक है कि वे सब भास के लिखे हुए हैं।

'प्रतिमा-नाटकम्' का आधार रामायण की सुप्रसिद्ध कथा है। इसमें राम के वनगमन से लेकर राजतिलक की कथा का नाटकीय रूप प्रस्तुत किया गया है। लेकिन रामायण की जो लोक-प्रचलित कथा है, उससे नाटक की कथा काफी भिन्न है। नाटककार की दृष्टि में कैकेयी दोषी नहीं है। श्रवण के पिता ने दशरथ को जो श्राप दिया था उसीके कारण कैकेयी ने राम को वनवास भिजवाया। राम के विरह के बिना महाराज के प्राण कैसे निकलते? कैसे श्राप पूरा होता? और भी अंतर हैं, जिन्हें केवल कवि-कल्पना कहकर टाला नहीं जा सकता, उनकी खोज-बीन होनी चाहिए।

नाटकीय तंत्र की दृष्टि से यह एक सफल नाटक है। भास छोटे-छोटे वाक्य लिखने के लिए प्रसिद्ध हैं, परंतु भाव इनमें भरे रहते हैं। इनकी भाषा बोल-चाल की, सरल, स्वभाविक और भावपूर्ण है। यह मानव-हृदय के सच्चे पारखी हैं। इनका चरित-चित्रण एक मनोवैज्ञानिक चरित-चित्रण है। प्रकृति-चित्रण में भी यह किसीसे पीछे नहीं हैं। जयदेव ने इन्हें कविता-कामिनी का हास माना है। संवाद भी इनके इनके अपूर्व होते हैं।

इनके नाटकों का पता अभी सन् १९०९ और १९१२ में ही लगा है।

—संपादक

GANDHI SMARAKA GRANTHALAYA
DATE....................
ACC. NO........................
CALL NO....................
BANGALORE

प्रतिमा-नाटक

: १ :

त्रेतायुग की बात है। अयोध्या के राजा दशरथ बूढ़े हो चले थे; उनका विचार हुआ कि अब राज-काज से छुट्टी लें और भगवान् का भजन करें। उनके चार पुत्र थे--राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। चारों राज-कुमार विद्वान्, वीर और सब कामों में चतुर थे। नियम के अनुसार इनमें सबसे बड़े राजकुमार राम को युवराज का पद मिलना चाहिए था। इसीलिए कुल-गुरु और मंत्रियों की अनुमति से राजा दशरथ ने राम को युवराज बनाने का निश्चय किया। यह निश्चय होते ही तैयारियां शुरू होगईं।

राजधानी में हर्ष और आनंद का समुद्र उमड़ पड़ा। प्रजाजनों की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वे राम को बहुत प्यार करते थे, बड़ी श्रद्धा थी प्रजा की राम पर। अभिषेक के लिए छत्र और चामर आये, सिंहासन नाना भांति से सजाया गया। चारों ओर मंगल-सूचक बाजे बजने लगे। मंत्री आये, गुरु वशिष्ठ आये, चारों तरफ गीत गूंज उठे। एक नाटक दिखाने की तैयारी भी हुई।

उधर अंतःपुर में भी इस समाचार पर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की जा रही थी। राम की पत्नी, जनकपुर के राजा जनक की पुत्री सीता को तो प्रसन्नता होनी ही थी। जो सखी उनतक यह शुभ समाचार लाई थी, मारे आनंद के सीता ने उसे अपने गहने उतारकर दे दिये। इसी समय उनकी एक सखी नाटक-भवन से वल्कल-वस्त्र उठा लाई। सीता ने देखा तो उन्हें बुरा लगा। लेकिन बाद में सखी के कहने पर कि सुंदर रूप पर सभी चीजें अच्छी लगती हैं, वह वल्कल सीता ने पहन लिया।

इसी समय अचानक अभिषेक के बाजे बजने बंद होगये। भाग्य ने एक नया खेल खेला।

राजा दशरथ के तीन रानियां थीं—कौशल्या (राम की माता), सुमित्रा (लक्ष्मण, शत्रुघ्न की माता) और कैकेयी (भरत की माता)। सबसे छोटी रानी कैकेयी को एक बार महाराज दशरथ ने दो वरदान दिये थे। कैकेयी ने अबतक इन वरदानों को नही मांगा था। इस समय उसने अपना पुराना ऋण मांगा। एक वरदान में उसने मांगा राम को चौदह वर्ष का वनवास और दूसरे में मांगा अपने पुत्र भरत का राजतिलक। महाराज दशरथ पर जैसे बिजली गिरी हो; पर वह विवश थे, उन्हें अपने वचन तो पूरे करने ही थे। वह रघुवंशी थे, जो प्राण देकर भी वचन पूरा करते हैं और

सत्य की रक्षा करते हैं। राम को राजा दशरथ प्राणों से अधिक प्रेम करते थे। उनके लिए बिना अपराध दंड जैसी आज्ञा देना उन्हें बड़ा कठोर लग रहा था। परंतु मन को कठोर करके राजा ने सत्य का पालन किया। कैकेयी को वरदान मिल गये। राम को वनवास की आज्ञा मिली और अभिषेक के बाजे बंद होगये। इस समाचार से हँसी-खुशी से भरी अयोध्या में दुःख, शोक और उदासी छा गई।

: २ :

राम तो बस राम थे। जब उन्हें राज मिल रहा था, तब वह प्रसन्नता से पागल नहीं हुए जा रहे थे और जब वनवास का आदेश मिला तो भी उन्होंने दुःख नहीं माना। और सीता, वह भी वैसी ही थीं। उन्हें तो यह कसकने भी लगा था कि पति को राज मिलते ही ससुर दशरथ वन चले जायंगे। जब राम से उन्होंने सुना कि वह युवराज होते-होते रह गये तो, सीता ने संतोष की सांस ली। अच्छा हुआ, महाराज दशरथ महाराज ही रहे, राम सीता के 'आर्यपुत्र'। वे दोनों खुशी-खुशी वन जाने की तैयारियां करने लगे। सीता तो पहले से ही वल्कल पहने थीं, राम ने भी वही किया।

पर गड़बड़ बढ़ रही थी, राजा दशरथ इस दुःख

को न सह सके, वह मूर्छित होगये। इससे चारों ओर कोलाहल मचने लगा। कुमार लक्ष्मण ज़रा तेज़ स्वभाव के थे--वह राम को प्रेम भी बहुत करते थे। सौतेली मां का यह कार्य उन्हें एक बड़ा अन्याय लगा। वह क्रोध में भरे राम के पास पहुंचे और राजा दशरथ की बेसुधी पर दुःखी राम से बोले, "यदि आप महाराज का दुःख दूर करना चाहते हैं तो उठाइये धनुष और इस अन्याय का बदला लीजिए। एक युवती स्वामी को मुट्ठी में कर छल-बल से इतना बड़ा अन्याय कर जाय, यह भला सहा जा सकता है? मैंने आज संसार को युवतीरहित कर देने का निश्चय कर लिया है।"

राम ने बड़ी कठिनता से लक्ष्मण का क्रोध शांत किया। बहुत प्रकार से समझाया, नीति की बातें कहीं, तब कहीं जाकर उनका गुस्सा उतरा।

सीता तो वन जाने को तैयार थी हीं, अब लक्ष्मण ने भी साथ जाने की हठ ठानी। राम ने जहां वल्कल पहने, लक्ष्मण ने अपनी मांग रखदी। वह बोले, "भाई, आज तक तो वस्त्र, भूषण, खान-पान सभीमें मुझे आप आधा भाग देते रहे हैं, फिर आज यह कैसी कंजूसी? वल्कल अकेले क्यों पहन रहे हैं? मुझे भूले ही जाते हैं।"

राम ने समझाया, सीता ने समझाया, पर लक्ष्मण न माने।

अंत में राम, लक्ष्मण और सीता वन चल दिये। महलों में रहनेवाली सीता आज बिना घूंघट के प्रजा के सामने आईं। उस समय की रीति थी—यज्ञ, विवाह, संकट और वन में स्त्रियों को देखने में दोष नहीं लगता।

इसी समय सूचना मिली कि राजा दशरथ होश में आकर इधर ही चले आ रहे हैं। कुछ ऐसा भी लगा कि शायद पुत्र के प्रेम में बूढ़े राजा अपना वचन भी तोड़ देना चाहते हैं। पर राम-लक्ष्मण अपने पिता का मन समझते थे। उन्होंने सोचा कि हमें चीर पहने देखकर बूढ़े पिता का हृदय क्या फट न पड़ेगा? अच्छा हो कि हम उनके सामने ही न पड़ें।

ऐसा सोचकर राम, सीता और लक्ष्मण राजा के वहां आने से पहले ही वन की ओर चले गये।

: ३ :

सीता और लक्ष्मण के साथ राम तो वन चले गये, लेकिन अयोध्या को सूनी कर गये। हाथियों ने चारा खाना छोड़ दिया, घोड़ों ने हिनहिनाना। क्या बच्चे, क्या बूढ़े, क्या जवान, स्त्री-पुरुष सभी शोक में डूबे रहते। राम, सीता और लक्ष्मण जिस ओर गये थे, उसी ओर टक-टकी बांधे देखते रहना और आंसू गिराते रहना ही

मानों उनका एकमात्र काम रह गया था। महाराज दशरथ की दशा तो बहुत ही बुरी थी। मारे दुःख के वह बराबर हाय-हाय करते रहते। कभी-खाट पर उठकर बैठ जाते, लेकिन तुरंत ही फिर गिर जाते। कौशल्या और सुमित्रा जैसे हृदय पर पत्थर रखकर, पुत्रों के वन जाने के दुःख को भुलाकर महाराजा की सेवा में लग रही थीं। महाराज दशरथ पागलों की तरह विलाप करते, "राम ने मुझे छोड़ दिया, लक्ष्मण ने भी मुझे भुला दिया। कहां है राम, सबकी आंखों का सितारा, दुखियों पर दया दिखानेवाला, राज्य को तिनके-जैसा समझनेवाला? बेटा राम, धर्म के लिए तुमने मुझ बूढ़े बाप को भी भुला दिया?"

इसी तरह बूढ़े राजा बार-बार विलाप करने लगे। वह कहते, "सूरज के समान राम चला गया। जैसे सूरज के साथ दिन चला जाता है, राम के साथ लक्ष्मण चला गया। सूरज और दिन के साथ जैसे छाया चली जाती है, वैसे ही राम-लक्ष्मण के साथ सीता चली गई।" वह सोचते--अच्छा होता कि मेरे संतान ही न होती, राम किसी और का पुत्र होता और कैकेयी स्त्री न होकर वन में सिंहनी होती। तब कितना अच्छा होता! क्यों ऐसा दुःख देखना पड़ता!

वह कौशल्या की बड़ाई करते, क्योंकि उसीने राम

को जन्म दिया था; वह सुमित्रा को सराहते, क्योंकि उसीका पुत्र लक्ष्मण राम के साथ वन गया था। वह उस वन की हवाओं के भाग्य को धन्य बताते, जो वन में विचरते राम को छूती हैं।

रानियां समझातीं, तरह-तरह से प्रयत्न करतीं, पर दशरथ का दुःख कम न होता। इसी बीच में राम को वन पहुंचाकर सुमंत्र लौट आये। महाराज को अब भी कुछ भरोसा था कि शायद सुमंत्र समझा-बुझाकर राम को लौटा लायें! पर वह तो अकेले लौटे। सुमंत्र को इसतरह अकेले आते देखकर महाराज दशरथ की छाती फटने लगी। उन्हें लगा कि राम को पहुंचाकर जो रथ लौटा है, वह काल का रथ है। वह अब मुझे साथ लेकर ही जायगा। सुमंत्र को देखते ही दशरथ चिल्ला उठे, "कहां है राम? ऐ राम को प्यार करनेवाले सुमंत्र, कहां है अपने बड़े-बूढ़ों का आदर करनेवाली सीता? कहां है सुमित्रा की आंखों का तारा लक्ष्मण?"

सुमंत्र से राम, लक्ष्मण और सीता की बातें सुनते-सुनते राजा दशरथ का धीरज बिल्कुल ही टूट गया। उनका जीवन-दीप धीरे-धीरे बुझने लगा। मरते-मरते उन्होंने कहा, "मैं सोचा करता था कि राम राजगद्दी संभालेगा, प्रजा को सुखी करेगा और मैं राज-काज के झंझट से

छुट्टी पाकर बुढ़ापा तपोवन में बिताऊंगा, पर कैकेयी ने क्षणभर में सब उलट-पलट कर डाला। जाग्रो, कह दो कोई कैकेयी से--राम वन चले गये, मैं भी जा रहा हूं। बुलवाले वह ग्रपने बेटे भरत को ग्रौर करती रहे ग्रपनी पाप की इच्छा पूरी।"

राजा को लगा कि उनके दुःख से दुःखी होकर उनके स्वर्गवासी पितर महाराज दिलीप, महाराज रघु, महाराज ग्रज सब उनके पास ग्राये हैं। उन्होंने ग्रंतिम बार कहा, "ग्राप क्यों ग्राये। ग्रब तो मेरे लिए भी ग्रापके साथ रहने का समय ग्रा पहुंचा है।" फिर राम, जानकी ग्रौर लक्ष्मण की रट लगाते हुए वह मौत की गोद में सो गये। महलों में हाहाकार मच गया।

: ४ :

ग्रयोध्या में जब यह सब हो रहा था, कैकेयी-पुत्र भरत वहां नहीं थे। वह थे बहुत दिनों से ग्रपने मामा के यहां कैकेय देश में। उन्हें ग्रयोध्या से केवल यह खबर भेजी गई थी कि राजा दशरथ बहुत बीमार हैं। इस समाचार को सुनते ही भरत तेज़ी के साथ ग्रयोध्या की ग्रोर चल पड़े। वह बड़े तेज़ चलनेवाले रथ से चले थे। जब वह रथ तेज़ी से चलता तो मार्ग के वृक्ष उड़ते दीखते, धरती रथ के पहियों में समाती लगती, पहियों के ग्रारे तो नज़र ही न ग्राते। भरत का हृदय धड़क

रहा था। अपने पिता, माता, भाई, परिवार आदि को देखने के लिए वह व्याकुल हो रहे थे। वह मन-ही-मन सोचते—घर पहुंचने पर पिता मुझे कितना प्यार करेंगे ? माताओं की आंखों से तो आनंद के आंसू बरसने लगेंगे और मेरे भाई तो बस मुझे घेर ही लेंगे। कितना आनंद होगा !

बेचारे भरत को क्या मालूम कि अब तो दुनिया ही बदल गई है। रथ हांकनेवाला सारथि सबकुछ जानता था, पर वह भरत से कैसे कह पाता ? एक नहीं, तीन-तीन भयानक बातें थीं। माता राज के लिए पागल होगई, भाई राम वन चले गये, पिता स्वर्ग गये। सब एक-से-एक बुरे समाचार थे।

भरत का रथ अयोध्या के पास आ गया। तभी उन्हें सूचना मिली कि अभी नगर में प्रवेश करना ठीक नहीं है। अभी 'कृत्तिका' नक्षत्र चल रहा है, जो अशुभ है। एक 'दंड' बाद 'रोहिणी' के शुभ नक्षत्र में प्रवेश ठीक होगा।

पास में ही एक मंदिर था। उन्होंने सोचा—ठीक ही तो है। इसी मंदिर में यह समय बिताना चाहिए। विश्राम तो हो ही जायेगा, साथ में देवताओं के दर्शन भी। एक पुराना नियम भी है—नगरों के पास कुछ देर बैठकर तब नगरों में प्रवेश करना चाहिए।

GANDHI SMARAKA GRANTHALAYA
BANGALORE-1.

यह मंदिर मंदिर तो था, पर साधारण मंदिर नहीं था। यह था 'प्रतिमा-गृह'। इस 'प्रतिमा-गृह' में राजा दशरथ के पितरों की प्रतिमाएं स्थापित थीं। इस वंश का जो-भी व्यक्ति मर जाता था, उसीकी प्रतिमा यहां स्थापित करदी जाती थी। मंदिर की सफाई और देख-भाल के लिए एक पुजारी––देवकुलिक भी वहां रहता था। अभी हाल में महाराज दशरथ की मृत्यु हो चुकी थी। नियम के अनुसार उनकी प्रतिमा भी यहां स्थापित की गई थी। चारों ओर पूजा के फूल और खीलें बिखरी थीं, दीवारों की पुताई के ऊपर चंदन से पांचों अंगुलियों की पांच छापें लगाई गई थीं, द्वार पर फूलों की मालाएं लटक रही थीं। भरत भीतर घुसे, मूर्तियां देखीं। सोचने लगे––लगती तो मनुष्यों की हैं, पर शायद कोई देवता ही हों। लेकिन कौन-से देवता हैं ? कौन-सा मंत्र पढ़कर इन्हें प्रणाम करना चाहिए।

इतने में पुजारी आया। पूछने पर पुजारी ने बताया कि ये मूर्तियां देवताओं की नहीं, अयोध्या के स्वर्गीय राजाओं की हैं। भरत और भी प्रसन्न हुए और एक-एक करके अपने पुरखों का परिचय जानने लगे। ये हैं दिलीप, जिन-सा धर्मात्मा मिलना कठिन है। ये हैं महाराज रघु, जिनके कानों में सदा वेद-मंत्रों की ध्वनि गूंजा करती थी। ये हैं महाराज अज, प्रेम के अवतार।

सबको प्रणाम, सबके चरणों में भरत का नमस्कार।

लेकिन यह क्या, यह चौथी प्रतिमा किसकी है ? जीवितों की प्रतिमा तो नहीं बनती। दिलीप, रघु और अज। इसके बाद तो महाराज दशरथ आते हैं--भरत के पिता। क्या वह चल बसे ? भरत घबरा गये। जब पुजारी से ठीक-ठीक समाचार मालूम हुआ तो मारे दुःख के वह मूर्च्छित हो गए।

थोड़ी देर बाद जब भरत की मूर्च्छा टूटी तो धीरे-धीरे उन्हें माता के द्वारा विवाह की शर्त के रूप में भरत के लिए राज्य मांगा जाना, राम का वन-वास और पिता की मृत्यु का सारा समाचार ज्ञात हुआ। भरत को फिर मूर्च्छा आगई। उनका दुःख ठीक था, प्रजा अगर समझे कि सारी गड़बड़ की जड़ भरत हैं तो उसका सोचना गलत तो नहीं है।

इसी समय प्रतिमा-गृह में कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी--तीनों रानियां आईं। उन्होंने वहां मूर्च्छित भरत को देखा। बड़ी दुःखी हुईं। मूर्च्छा टूटने पर भरत ने कौशल्या और सुमित्रा को बड़े विनय से प्रणाम किया, परंतु इन दोनों के बीच में बैठी अपनी माता कैकेयी को देखकर भरत को बड़ा क्रोध आया। भरत अपने पिता की आज्ञा के आगे सिर झुकाते थे और सौतेले भाई राम को सगे से भी बढ़कर जानते और

मानते थे। उनकी माता ने लालच में आकर कितना बुरा किया था। पूज्य पिता उसीके कारण स्वर्ग गये और सीता सहित प्यारे भाई वन चले गये।

भरत बेतरह बिगड़ उठे, उन्होंने कैकेयी को माता मानने से इनकार कर दिया। कैकेयी ने बहुत-कुछ सफ़ाई देनी चाही, कौशल्या और सुमित्रा ने भी समझाना चाहा, पर भरत नहीं माने।

सुमंत्र ने उनसे राज्य का भार स्वीकार करने को कहा। अयोध्या में राजा नहीं था। जैसे बिना ग्वाले के गायें नष्ट हो जाती हैं, वैसे ही बिना राजा के अयोध्या की प्रजा का नाश हो रहा था। लेकिन भरत ने स्वीकार नहीं किया। प्रजा को राजा चाहिए तो वह भरत के साथ चल सकती है। भरत का तो निश्चय था--मैं वहीं जाऊंगा, जहां लक्ष्मण के प्यारे राम हैं। राम के बिना आज अयोध्या अयोध्या नहीं रही है। जहां राम हैं, वहीं अयोध्या है।

: ५ :

अपनी प्रजा के आंसुओं का बल लिये भरत राम से मिलने वन की ओर चल दिये। राम के दर्शनों के लिए सब व्याकुल थे। रास्ते-भर भरत पूंछते चले, "कहां हैं राम हमारे बड़े भाई? कहां हैं अयोध्या के राज-सिंहासन के सच्चे अधिकारी? कहां हैं वह शिरो-

मणि ? कहां हैं वह सत्य के लिए सबकुछ छोड़ देनेवाले ?"

इसी तरह अपने मन में राम के दर्शनोंकी इच्छा बसाये राम के समान ही सत्य के मार्ग पर चलनेवाले भरत एक दिन उस 'जनस्थान' में जा पहुंचे, जहां आश्रम बसाये राम, सीता और लक्ष्मण अपने वनवास के दिन काट रहे थे। दूर से ही राम ने भरत का स्वर पहचाना। उन्होंने लक्ष्मण को भेजा कि बाहर जाकर देखो। बात यह थी कि अबतक तो भरत राम से मिलने को व्याकुल थे और भागाभाग 'राम-राम' रटते तपोवन तक आ पहुंचे थे, पर राम के सामने पड़ने में उन्हें बड़ी लाज लग रही थी। वह समझते थे कि मेरी माता कैकेयी ने राम को वन-वास दिया, इस तरह राम अगर मुझे दोषी समझते हों तो अचरज क्या है ?

लक्ष्मण ने लौटकर राम को बताया कि सचमुच भरत आये हैं। तब राम ने सीता को भेजा कि तुम भरत को अंदर ले आओ। सीता भरत के स्वागत को पहुंची, उन्होंने भरत को देखा और भरत ने उन्हें। आज एक-दूसरे को वे बहुत दिनों बाद देख रहे थे। सीता को लगा कि भरत तो बिल्कुल राम ही हैं। दोनों भाइयों के एक से मिलते रूप ने थोड़ी देर के लिए सीता को चक्कर में डाल दिया। वह एकक्षण को तो यही समझ बैठीं कि ये राम

ही हैं। पर जब भरत ने आगे बढ़कर उन्हें प्रणाम किया तो वे अपनी भूल समझीं और भरत को आशीर्वाद देकर भीतर ले चलीं। राम को देखते ही भरत उनके चरणों में झुके और राम ने उठाकर उन्हें छाती से लगा लिया।

राम से मिलकर भरत का सब दु:ख जैसे मिट गया। कुशल-समाचार पूछने पर जब राम को अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला तो उनका धीरज टूट गया और वह बालकों की भांति रोने लगे। सीता, लक्ष्मण, सुमंत्र आदि ने बड़ी कठिनता से उन्हें समझा-बुझाकर चुप किया।

अब असल बात सामने आई। भरत ने राज-पाट संभालने के लिए राम से अयोध्या लौट चलने को कहा। भरत का कहना था कि यदि वन में किसीका रहना आवश्यक ही हो तो राम नहीं, भरत रहेंगे।

पर राम तो सत्य से टलनेवाले नहीं थे। इन्होंने भरत से साफ़-साफ़ कहा, "भाई, हमारा वंश तो सदा से सत्य का पुजारी रहा है, तुम आज सत्य को कैसे छोड़ने को तैयार हो रहे हो? मैं वन आया हूं पिता की आज्ञा से; न मैं किसीसे डरता हूं और न मेरी बुद्धि में ही कोई भ्रम है। पिता की आज्ञा का पालन करने से मैं किसी तरह हट नहीं सकता।"

भरत रोते-रोते कहने लगे, "आर्य, आप मुझपर कुछ तो दया कीजिए। ऐसी बातें कहकर घाव पर नमक मत छिड़किये। देखिए, आप जिस वंश में उत्पन्न हुए हैं, उसीमें मैं भी। माता के अपराध के कारण आप मुझे दोषी न मानें।"

भरत की ऐसी दीनदशा देखकर सीता के हृदय में बड़ी करुणा उपजी, राम भी करुणा से भर गये। पर बात सत्य की थी, प्रतिज्ञा पालने की थी। वह कैसे स्वर्ग-वासी पिता की आज्ञा तोड़कर राज-गद्दी स्वीकार करते। उन्होंने भरत को बार-बार समझाया। अंत में धर्म के नाम पर विवश हुए भरत ने कहा, "ठीक है, आप पिता की आज्ञा पालते हुए वन में रहिए, लेकिन मैं भी आपके साथ ही वन में रहूंगा और आपकी सेवा करूंगा।"

परंतु राम तो राम थे, उन्होंने भरत को फिर याद दिलाया, 'पिता की आज्ञा से तुम्हें राज्य संभालना है।" इतना ही नहीं, भरत को अपनी सौगंध देकर विवश कर दिया कि वह राज संभालें।

अब भरत बिल्कुल बेबस हो गये। उन्होंने भाई की बात मानली, परंतु एक शर्त के साथ कि वह केवल चौदह वर्षों तक ही राज्य संभालेंगे––एक धरोहर की तरह। उसके बाद वन से लौटकर राम को अपना राज्य वापस लेना ही होगा। भरत की यह शर्त सुनकर सभी

उनकी प्रशंसा करने लगे। राम अब कुछ न कह सके। भरत की शर्त माननी ही पड़ी।

अब भरत ने एक प्रार्थना और की। उन्होंने राम से उनकी चरण-पादुकाएं (खड़ाऊं) मांगीं। राम क्या कहते ? उन्हें पादुकाएं देनी पड़ीं और भरत ने सबके सामने घोषणा की कि राज्य का अभिषेक-जल इन्हीं पादुकाओं पर छोड़ा जायगा।

अब किसका साहस था कि भरत पर कलंक लगाता। सभी उनके त्याग और विनय पर उनसे प्रसन्न थे। राम की आज्ञा से वह उसी दिन अयोध्या को वापस हुए। लौटते हुए वह सोच रहे थे--अयोध्या के लोग आशा लगाये राम के दर्शनों की अधीर होकर बाट जोहते होंगे, राम के न होने पर भी जब वे राम की ये चरण-पादुकाएं देखेंगे तो क्या उन्हें कम प्रसन्नता होगी ?

: ६ :

राम का वनवास चल रहा था। एक तरह से वह प्रसन्न थे। वह थे, उनकी प्रिय पत्नी सीता थीं, प्यारा भाई लक्ष्मण था। सीता आश्रम के वृक्षों को सींचती, राम शोभा निहारते। चारों ओर सुंदर वृक्ष, चहचहाते पक्षी, सब ओर शांति, आनंद-ही-आनंद। कभी-कभी सुकुमारी सीता को काम करते देख उन्हें कुछ दुःख

लगता था। वह सीता, जिसके हाथ दर्पण उठाने में भी थक जाते थे, आज उन्हीं हाथों में घड़े उठाये पेड़ों में पानी दे रही है! पर यह तो वन का जीवन है। वन में जैसे बेलें कड़ी और कठोर हो जाती हैं, वैसे ही कोमल स्त्रियां भी कठोर हो जाती हैं?

एक दिन सीता ने देखा कि राम कुछ उदास हैं। असल में स्वर्गवासी राजा दशरथ के वार्षिक श्राद्ध का दिन आगया था। जेठे पुत्र होने से राम को ही यह काम करना था। सीता की राय थी कि भरत तो राजकीय ठाठ-बाट से श्राद्ध कर ही देंगे, आप नियम पालने के लिए वनवासी जैसा कर सकते हैं, वैसा श्राद्ध कर दीजिए। पर राम को यह स्वीकार न था। वह सोचते थे कि श्राद्ध में फल और कुश-दाभ पाकर स्वर्गवासी पिता को हमारे वनवास की याद आजायगी और वह स्वर्ग में भी दुखी होंगे। राम की उदासी का यही कारण था। इतने में एक संन्यासी आता दिखाई दिया। यह संन्यासी सचमुच संन्यासी नहीं था, यह था संन्यासी का कपट रूप बनाये लंका का राजा रावण। खर-दूषण की मृत्यु का समाचार पाकर वह सीता को छल से चुराने आया था।

इस विचार से ठीक उस समय वह वहां पहुंचा, जिस समय राम स्वर्गवासी पिता के श्राद्ध की चिंता कर रहे

थे। द्वार पर जाकर उसने पुकारा, "मैं अतिथि यहां हूं। कोई है ?"

अतिथि को आया जानकर स्वागत के लिए राम और सीता बाहर निकल आये। उन्होंने सन्यासी को प्रणाम किया, विराजने के लिए आसन दिया और सीता जल लाकर अतिथि की सेवा करने को तैयार हुईं। पर अधिक निकट आने से रावण को भेद खुल जाने का डर था। राम के रूप, स्वर और बातचीत करने के ढंग से वह प्रभावित हो गया था और घबरा रहा था। उसने अधिक सेवा लेना स्वीकार नहीं किया और 'मीठे वचनों' को ही काफ़ी माना।

जब राम भी बैठ गये तो रावण ने ढोंग करना आरंभ किया। एक विद्वान् और ज्ञानी ब्राह्मण का ढोंग रचकर वह कहने लगा, "मैं काश्यप गोत्र में जन्मा हूं। मैंने वेद, शास्त्र, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, न्यायशास्त्र और श्राद्धकल्प का भलीभांति अध्ययन किया है।"

श्राद्धकल्प का नाम सुनते ही राम चौंके, जैसे उनको अपनी चिंता दूर होती लगी। उन्होंने रावण के सम्मुख पिता के श्राद्ध से संबंध रखनेवाली अपनी चिंता रखी और उसका हल जानना चाहा।

रावण ने बताया, "यों तो जो कुछ श्रद्धा से दिया जाय, वही श्राद्ध है, पर घासों में कुश, औषधियों में

तिल, शाकों में कलाय, मछलियों में महाशफर, पक्षियों में गिद्ध, और पशुओं में गाय या गैंडा देना उत्तम कहा गया है ।"

राम ने पूछा, "क्या कुछ और भी है जो दिया जा सकता है ।"

रावण कहने लगा, "विशेष तो कोई बड़ा प्रतापी ही पा सकता है । हिमालय की सातवीं चोटी पर महादेव के मस्तक से गिरनेवाली गंगा का जल पीनेवाले, वैडूर्यमणि के समान काली पीठवाले, हवा की तरह तेज़ भागनेवाले 'कांचन-पार्श्व' नाम के मृग रहा करते हैं । बड़े-बड़े मुनि केवल ध्यान करके ही उन्हें बुलाते हैं और पितरों का श्राद्ध करते हैं । इन्हें श्राद्ध में पाकर पितर तृप्त होते हैं और स्वर्ग पहुंचकर अंत में मोक्ष प्राप्त करते हैं ।"

राम हिमालय पर जाकर मृगों को लाने के लिए तैयार हुए, पर रावण ने उनकी हँसी उड़ाई, "कहीं मनुष्यों को कांचनमृग मिला करते हैं, मनुष्य को तो दीखते तक नहीं ।"

राम उत्तेजित हो उठे, उन्होंने कहा, "हिमालय के मृग ! हिमालय इसी समय उन्हें यहीं भेजेगा, नहीं तो उसके टुकड़े-टुकड़े उड़ जायंगे ।"

रावण ने सोचा, "वाह रे इसका घमंड !" लेकिन

तभी बिजली जैसे कड़कड़ाई । रावण ने देखा कि राम की आज्ञा मानकर हिमालय ने कांचनमृग भेज दिया है। वह राम के प्रभाव को सराहने लगा । राम ने सीता से कहा, "हिमालय का मृग आ रहा है, मैथिली ! पिताजी बड़े भाग्यवान् हैं । लक्ष्मण से कहो कि मृग को ले आयें, यह मृग तो पूजनीय है।" पर राम को जब ज्ञात हुआ कि लक्ष्मण तो उन्हींकी आज्ञा से तीर्थ-यात्रा से लौटे एक कुलपति की अगवानी करने गये हैं तो, वह सीता को अतिथि रावण की सेवा के लिए छोड़ स्वयं मृग को लेने चले गये ।

पर यह सब तो रावण की कपट-माया थी। मृग एक छलांग में भागा और एक घनी झाड़ी में छिपकर ग़ायब होगया। उसीके पीछे राम भी दूर चले गए। सीता को कुछ डर लगने लगा और वह कुटिया के भीतर जाने को तैयार हुईं । तभी रावण ने असली रूप दिखाया और सीता को झपटकर पकड़ लिया। रावण के हाथों में पड़कर सीता रक्षा के लिए राम-लक्ष्मण का नाम ले-लेकर चिल्लाने लगीं, पर वहां न राम थे, न लक्ष्मण। कौन सीता को बचाता ? रावण राम, लक्ष्मण और स्वर्गवासी दशरथ को धिक्कारता और उन्हें कायर बताता, अपने बल की डींग हांकता सीता को हर ले चला । जाते-जाते वनवासी तपस्वियों से कहता गया,

"हे वनवासी तपस्वियों, सुनलो ! रावण बलपूर्वक सीता को हरे ले जा रहा है। अगर राम सच्चा क्षत्रिय हो तो अपना बल मुझे दिखाये।"

सीता को लेकर रावण बड़े वेग से लंका की ओर जा रहा था कि पीछे से उसने एक ललकार सुनी। रावण के हाथों में से सीता को छुड़ाने के लिए स्वर्गवासी राजा दशरथ का एक मित्र जटायु रावण की ओर झपटा आ रहा था। उसके पंखों से निकली तीव्र वायु से वन के वृक्ष कांपने लगे थे और उसकी भयानक चोंच देखकर रावण डरने लगा था। जटायु ने बड़े वेग से रावण पर आक्रमण किया। उसने अपने पंखों की मार से रावण को थका डाला, पैनी चोंच और लोहे के कांटों जैसे नाखूनों से रावण की छाती पर बड़े-बड़े घाव कर दिये। जटायु रावण को इस तरह चीर रहा था जैसे वज्र कठोर शिला को फाड़ता है।

पर रावण ने तो देवताओं को जीता था। बेचारा जटायु कबतक उसका सामना करता। अपनी शक्ति से कहीं अधिक वह रावण से लड़ा, पर अंत में रावण ने उसके दाहिने कंधे पर तलवार का एक प्रहार करके उसे मार डाला। अब रावण का मार्ग साफ़ था। रोती-चिल्लाती सीता को लेकर वह लंकापुरी जा पहुंचा।

H·006680
GANDHI SMARAKA GRANTHALAYA 015,2 BHA
BANGALORE-1. 152w3N58;1

: ७ :

इधर अयोध्या में एक-एक दिन गिनते हुए भरत राम की याद में समय बिता रहे थे। कब चौदह वर्ष की लंबी अवधि समाप्त हो और कब राम अयोध्या में वापस आयें! वह कभी-कभी राम का कुशल-समाचार जानने के लिए किसी-न-किसी को वन भेजा करते थें। इस बार इस काम के लिए सुमंत्र गये थे। सुमंत्र वन में सीता-हरण का समाचार जानकर दुःख से व्याकुल हुए अयोध्या लौटे थे। वह इस समाचार को मुंह से कहते भी हिचक रहे थे। भरत के सामने पहुंचकर तो वह सबकुछ भूल-से गये। बड़ी कठिनता से हृदय पर पत्थर रखकर वह एक-एक बात कहने लगे। तपोवन में अब कोई नहीं है। वनवासी वानरों का किष्किधा नाम का एक स्थान है। सुना है, राम-लक्ष्मण वहीं चले गये। वानरों के राजा सुग्रीव को उसके बड़े भाई बालि ने राज्य से हटा दिया था और उसकी स्त्री छीन ली थी। राम भी तो 'सुग्रीव के समान' ही विपत्ति में पड़े हैं, इसलिए उन्होंने सुग्रीव का दुःख समझा और दूर भी कर दिया।

भरत ने सुना। 'सुग्रीव के समान' शब्द से वह घबरा उठे। सुग्रीव का राज्य गया था, स्त्री छिनी थी––राम का भी तो राज्य गया है, क्या स्त्री भी छिन गई ? भरत चौंक उठे। उन्होंने स्वर्गवासी राजा

दशरथ की सौगंध देकर सुमंत्र से सारी बात साफ़-साफ़ पूछी। सुमंत्र ने विवश होकर बताया, "मुनियों की रक्षा के कारण राम की राक्षसों से शत्रुता हो गई थी। इसी कारण रावण ने छलपूर्वक सीता को चुरा लिया!"

भरत तो सुनकर एकबार मूर्च्छित होकर गिर पड़े। जब मूर्च्छा टूटी तो क्रोध में भरकर राम के वन चले जाने के बाद से पहली बार कैकेयी के महल में पहुंचे। कैकेयी के सामने पहुंचते ही भरत बरस पड़े, "अब तो तुम्हारी इच्छा पूरी हुई। जो राम तुम्हारी आज्ञा से राज-पाट छोड़कर वन चला गया था, उसकी पत्नी भी हर ली गई! अब तो सुखी हो। हाय, तुम्हारे कारण इस परम-यशस्वी कुल को 'बधूहरण' का दिन भी देखना पड़ा।"

कैकेयी को सारी बुराई की जड़ समझा जा रहा था, पर वह अपने मन में कितना दुःख और भेद छिपाये यह सब सह रही थी, यह कौन जानता था? जानते थे तो कुछ बड़े-बूढ़े और सुमंत्र! अब कैकेयी अधिक न सह सकी, उसने सुमंत्र को आज्ञा दी कि सारा भेद खोल दिया जाय। आज्ञा पाकर सुमंत्र ने बताया, "राजकुमार भरत, तुम्हारी माता का कोई अपराध नहीं है, तुम व्यर्थ इनसे नाराज हो! एक बार महाराज दशरथ शिकार को गये थे। वहां उन्हें बड़ा धोका

हुआ। उन्होंने अंधे मुनि के एकमात्र पुत्र श्रवण को जल भरते समय मार डाला था। बनेला हाथी समझकर, घड़े भरने के शब्द पर उन्होंने शब्द-बेधी बाण मारा था। दुःख के मारे रोते-रोते मुनि ने महाराज को शाप दिया कि तुम भी मेरे ही समान पुत्र-शोक में प्राण दोगे। इसके बाद उन्होंने प्राण छोड़ दिये थे।"

भरत इस कष्ट की कहानी को सुनकर बड़े दुःखी हुए। तभी उनकी माता ने कहा, "पुत्र, मैंने इसी कारण सारा दोष अपने माथे लेकर राम को वन भेजा। मुनि के बचन तो सत्य होने ही थे।"

पर भरत ने फिर पूछा, "राम को ही वन क्यों भेजा गया, भरत को क्यों नहीं। और चौदह वर्षों की अवधि क्यों बांधी गई ?

मां ने दोनों बातों का उत्तर दिया, "तुम सदा से मामा के यहां रहते आये थे, तुम्हारा वियोग राजा सहते आये थे। राम का वियोग ही उन्हें सताता। और मैं 'चौदह दिन' कहना चाहती थी, मन विकल होने से 'चौदह वर्ष' मुंह से निकल गया।

पर राम के प्रेम में भरत को मां की बात पर विश्वास करना कठिन हो रहा था। वह इन बातों को स्त्री-बुद्धि की चतुरता ही समझ रहे थे। परंतु रानी कैकेयी की बातों का समर्थन वशिष्ठ, वामदेव आदि

जैसे ऋषियों ने किया तो भरत को मां के साथ किये अपने बर्ताव पर बड़ी लज्जा और दुःख हुआ। वह मां के चरणों में गिरकर क्षमा मांगने लगे।

इसी बीच सीता-हरण का समाचार सुनकर बड़ी रानी कौशल्या के मूर्च्छित हो जाने का समाचार मिला। कैकेयी और भरत उधर चल पड़े। कुछ समय के बाद भरत बड़ी भारी सेना लेकर रावण का नाश करने के लिए निकल पड़े।

: ८ :

उधर राम-लक्ष्मण ने सीता को छुड़ाने के लिए वे काम कर डाले थे, जिनपर अचरज होता है। किष्किधापुरी में सुग्रीव को राज्य दिलाकर वानरों और रीछों की सेना लेकर उन्होंने रावण की लंकापुरी पर आक्रमण कर दिया था। वहां उन्होंने भयंकर युद्ध कर राक्षसों के राजा रावण और उसके भयंकर साथियों को मार डाला था। राम की कृपा से अब सबको रावण के अत्याचारों से छुटकारा मिल गया था। रावण का एक भाई था––विभीषण। उसका चरित्र राक्षसों-जैसा न होकर निष्कलंक था। राम ने उसीको रावण के बाद लंका का राजा बना दिया। सबसे बड़ी बात यह हुई थी कि इतने दिनों तक पराये घर––राक्षस के घर रहकर भी सीता, परीक्षा होने पर ऋषि-मुनियों के सम्मुख

निष्कलंक सिद्ध हुई थीं। अब रामचंद्र लंका जीतकर सीता, लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव और उनके दल-बल के साथ 'जनस्थान' वन में लौटकर आ रहे थे और वहां उनके स्वागत की तैयारियों की धूम थी।

यथासमय पुष्पक-विमान पर चढ़कर राम 'जन-स्थान' में आ पहुंचे। चारों ओर से जय-जयकार हो उठी। राम भी अपने इतने दिनों तक रहे-बसे स्थान पर आकर बड़े प्रसन्न हुए। रावण-विजय, पिता की आज्ञा का पालन और आश्रम तथा ऋषि-मुनियों के दर्शन कर उनका मन फूला न समाता था। ऋषि-पत्नियों से भेंटकर सीता को भी बड़ी प्रसन्नता हुई थी। सीता और राम इतना कष्ट उठाकर फिर मिल गये थे और अपनी जानी-पहचानी वस्तुओं को देख-देखकर पुरानी स्मृतियां फिर से नई कर रहे थे। सीता के लगाये पौधे अब बड़े वृक्ष हो गये थे। उन्हें देखकर सीता की पुरानी प्रसन्नता लौट आई थी।

एक दिन सीता और राम उस महासरोवर के तट पर बैठे थे, जहां उन्होंने स्वर्गवासी राजा दशरथ के श्राद्ध के विषय में सोचा था कि सहसा उड़ती हुई भयानक धूल, शंख-ध्वनि और वीरों के गरजने के शब्द से तपोवन की शांति भंग होने लगी। राम-सीता इस पर विचार कर ही रहे थे कि लक्ष्मण आ पहुंचे।

उन्होंने बताया कि दल-बल सजाये माताओंसहित भरत भाई चले आ रहे हैं।

राम-सीता इस समाचार से प्रसन्न हो उठे। जबतक वे उनका स्वागत करने आगे बढ़े वे सब वहीं आ पहुंचे। चौदह वर्ष के बाद कुशलतापूर्वक सारे विघ्न और संकटों को पारकर ऐसा शुभ दिन आया था। सब ओर हर्ष और आनंद उमड़ा पड़ रहा था। सब प्रसन्न थे।

भरत ने अवसर देखकर राम से राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना की। राम कुछ कहें-कहें कि माता कैकेयी ने कह डाला, "पुत्र, अब विलंब की आवश्यकता नहीं, हम लोगों की यह बड़ी पुरानी इच्छा है।"

इसी समय शत्रुघ्न वहां आये। वह भांति-भांति के संकट सहकर भी गुणी और तेजस्वी सिद्ध हुए, रावण-विजयी, गुरु के समान, अपने बड़े भाई के दर्शनार्थ उतावला मन लिये पधारे थे। सबको प्रणाम कर उन्होंने कहा, "महर्षि वशिष्ठ और वामदेव, मंत्रियों और प्रजा के प्रतिनिधियों के साथ आपका राज्याभिषेक करने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

अब राम क्या कहते? वहीं 'जनस्थान' में राम का राज्याभिषेक संपन्न हुआ। मुनियों के द्वारा छोटी-बड़ी नदियों-नदों और तीर्थों के जलों से राम का अभिषेक हुआ। चारों ओर रावण-विजयी राम की जय-ध्वनि

गूंज उठी। माताएं आनंदित हुईं। लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न ने राम का अभिनंदन किया। विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, जाम्बवान् आदि राम के सहायकों ने राम को बधाइयां भिजवाईं। राम ने सबके स्नेह को स्वीकार किया और अपने स्वर्गीय पिता के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनकी आत्मा की तृप्ति के लिए प्रार्थना की।

माता कैकेयी ने आशा प्रकट की कि अयोध्या में भी शीघ्र ही ऐसा ही उत्सव होना चाहिए। उनकी आशा को आज्ञा मानकर राम ने सिर झुकाया। याद करते ही सूर्य के समान अपने तेज से 'जनस्थान' को प्रकाशित करता हुआ पुष्पक-विमान प्रकट हुआ और अपने बंधु-बांधवों तथा मित्रों के साथ उसपर चढ़कर राम अयोध्या की ओर चल पड़े।

अयोध्या में राम को पाकर नगर-वासियों के आनंद की सीमा न रही। राम के राज्याभिषेक का उत्सव फिर एक बार बड़े उत्साह के साथ मनाया गया।

भगवान् राम जानकी और बंधुओं के साथ बहुत दिनों तक राज्य करते हुए पृथ्वी का पालन करते रहे।

GANDHI SMARAKA GRANTHALAYA
DATE........................
ACC NO..............................
CALL NO......................

GANDHI SMARAKA GRANTHALAYA
DATE.........................
ACC. No.........................
CALL No.........................

Mahatma Gandhi Memorial Library
5, Kumara Park (East), Bangalore-1

BOOK CARD

152w3N58;1
CL No. 015,2BHA Acc. No. H.000690
Author. BHASA (ಭಾಸ).
Title Pratima nataka

Ticket No.	Issue Date	Return Date	Ticket No.	Issue Date	Return Date

015,2BHA
152w3N58;1
H.000690.

संस्कृत-साहित्य-सौरभ-माला की पुस्तकें

१. कादंबरी
२. उत्तर-रामचरित
३. वेणी-संहार
४. शकुंतला
५. मृच्छकटिक
६. मुद्राराक्षस
७. नलोदय
८. रघुवंश
९. नागानंद
१०. मालविकाग्निमित्र
११. स्वप्नवासवदत्ता
१२. हर्षचरित
१३. किरातार्जुनीय
१४. दशकुमार-चरित : भाग १
१५. दशकुमार-चरित : भाग २
१६. मेघदूत
१७. विक्रमोर्वशी
१८. मालती-माधव
१९. शिशुपाल-वध
२०. बुद्ध-चरित
२१. कुमार-संभव
२२. महावीर-चरित्त
२३. रत्नावली
२४. पंचरात्र
२५. प्रियदर्शिका
२६. वासवदत्ता
२७. रावण-वध
२८. सौंदरनंद
२९. कुंदमाला
३०. यशस्तिलक
३१. तिलकमंजरी
३२. प्रतिमानाटक

३२

सैंतीस नये पैसे